



मूल्य : 2 रु.
वर्ष : 74
संस्कृत संवत् 1960853118
23 जुलाई, 2017
दयानन्द 193
वार्षिक : 100 रु.
आजीवन : 1000 रु.
दूरभाष : 2292926, 5062726

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

जालन्धर

वर्ष-74, अंक : 17, 20-23 जुलाई 2017 तदनुसार 8 श्रावण संवत् 2074 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

उत्तम चाल चल

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

अपक्रामन्यौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः।

प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह॥

-अथर्व० ७।१०५।१

शब्दार्थ-पौरुषेयात् = पुरुष-सम्बन्धी [वचन] से
अपक्रामन् = दूर भागता हुआ [और] दैव्यम् = देवप्रणीत वचः
= वचन को वृणानः = वरण करता हुआ, अपनाता हुआ तू
विश्वेभिः = सम्पूर्ण सखिभिः = सखाओं के सह = साथ
प्रणीतीः = उत्तम चालों को अभ्यावर्तस्व = सब ओर से बताव
में ला।

व्याख्या-मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है, इस विषय में बहुत थोड़े मनुष्य संसार में सतर्क हैं। मनुष्यों की बहुत अधिक संख्या तो अपने लक्ष्य के विषय में कुछ जानती ही नहीं। खाना, पीना, पहनना, भोग भोगना-यही उनके लिए मनुष्य-जीवन का परम लक्ष्य है, परन्तु यह तो कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी आदि को भी प्राप्त है? क्या मनुष्य की विशेषता (ज्ञान) केवल इन पशुवृत्तियों की तृप्ति के लिए मनुष्य को मिली है? यदि मनुष्य-जीवन का लक्ष्य कुछ अन्य ही है, तो उसका उपदेश भी कहीं होगा। मनुष्यों की अधिकांशता क्या वाणी से और क्या कार्य से भोगसामग्री जुटाने को ही मनुष्य-जीवन की सिद्धि समझ रही है। भगवान् ने मनुष्य को उसकी उत्पत्ति के साथ ज्ञान भी दिया था। उस ज्ञान को वेद कहते हैं। वेद के शब्दों में उसे 'दैव्यं वचः' भी कहते हैं। वेद कहता है-'अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः' = पौरुषेय वचन से दूर हटकर दैव्य वचन का वरण कर।

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य, उद्देश्य-सिद्धि के साधन सभी 'दैव्यं वचः' = वेद में उक्त हैं। उसको अपना ! महान्-से-महान् विद्वान् भी मनुष्य-जीवन की इतिकर्तव्यता का पूर्ण ज्ञान नहीं दे सकता, अतः भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में सर्व मनुष्यों के कल्याणार्थ वेदवाणी का उपदेश किया। वेद-ज्ञान सब प्रकार के अज्ञान तथा उससे होने वाले पाशों का विनाश करता है-'उत्

वैदिक भारत-कौशल भारत आर्य महासम्मेलन 5 नवम्बर को नवांशहर में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में आगामी आर्य महासम्मेलन वैदिक भारत-कौशल भारत 5 नवम्बर 2017 रविवार को नवांशहर में करने का निश्चय किया गया है। इस अवसर पर उच्चकोटि के वैदिक विद्वान् वक्ता, सन्यासी, संगीतज्ञ एवं नेतागण पधारेंगे। कार्यक्रम की विस्तृत सूचना समय-समय पर आपको आर्य मर्यादा साप्ताहिक द्वारा मिलती रहेगी। इसलिए 5 नवम्बर 2017 की तिथि को कोई कार्यक्रम न रखकर पंजाब की सभी आर्य समाजें अधिक से अधिक संख्या में नवांशहर में पहुंच कर अपने संगठन का परिचय दें।

-प्रेम भारद्वाज
महामन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

त्वा निऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि [अथर्व० ८।१।३]-दैवी वाक् द्वारा पाप के पाशों से हम तेरा उद्धार करते हैं। वेद में इस दैवी वाक् को 'कल्याणी वाणी' (यजुः० २६।२) भी कहा गया है। इसको अपनाने का अर्थ है-'प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह' = सम्पूर्ण मित्रों के साथ उत्तम चालों को सब ओर से बताव में ला।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। कोई एक मनुष्य दूसरों से सहायता-प्रत्यक्ष या परोक्ष में-लिये बिना अपनी शरीर-यात्रा नहीं चला सकता। यही परमुखापेक्षिता समाज-निर्माण का मूल कारण है। समाज को सुचारुरूप से चलाने के लिए विशेष व्यवस्थाओं का विधान करना पड़ता है। वेद का आदेश है कि हे मनुष्य ! तू सब सखाओं = अपने-जैसों के साथ प्रणीति = उत्तम चाल चल, अर्थात् ऋजुमार्ग से चलकर अपनी उन्नति करने वालों के साथ वैर-विरोध तथा कुटिलता का व्यवहार न कर।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

अच्छे काम करने से आयु लम्बी होती है

-डॉ. अशोक आर्य १०४ शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी

प्रत्येक प्राणी की अभिलाषा होती है कि वह लम्बी, अत्यंत लम्बी आयु प्राप्त करें। आयु लम्बी ही नहीं सुखमय भी हो। दुःखों से भरा प्राणी सदा इस संसार से छुटकारा पाना चाहता है। जब आयु सुखों से भरी हो तो कितनी भी लम्बी हो, इस में प्राणी प्रसन्न ही रहता है। इसलिए ही वह सुखों से भरपूर दीर्घ आयु की कामना करता है। दीर्घ आयु के लिए अभिलाषी को कर्म भी ऐसे ही करने होते हैं, जिससे वह प्रसन्न चित्त रह सके, दृश्य भी ऐसे देखने होते हैं, जो उस की प्रसन्नता को बढ़ा सके। संवाद भी ऐसे सुनने होते हैं, जो उस की खुशियों को बढ़ा सकें। बोलना भी ऐसा होता है, जो अच्छा हो ताकि प्रतिफल में उसके कानों में संवाद भी अच्छे ही पड़ें। इस निमित्त ऋग्वेद के मन्त्र १.८.९.८ तथा यजुर्वेद के मन्त्र २५.२१ ; सामवेद के मन्त्र १८२४ ; तैत्तिरीय; आर. १.१.१ में बड़ा सुन्दर उपदेश किया गया है :

**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा,
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा ॥**

**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्-
व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥**
ऋग्वेद १.८.९.८ ; यजुर्वेद २५.२१; सामवेद १८२४; तैत्तिरीय; आर. १.१.१ ॥

शब्दार्थ-(यजत्राः) हे पूजनीय (देवाः) देवो ! (कर्णेभिः) हमारे कानों में (भद्रं) मंगल (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आँखों से (भद्रं) अच्छा (पश्येम) देखें (स्थिरैः) पुष्ट (अङ्गैः) अंगों से (तुष्टुवांसा) स्तुति कर्ता (तनूभिः) अपने शरीरों से (देवहितं) देवों के हितकर (यत आयुः) जो आयु है उसे (व्यशेमहि) पावें।

भावार्थ-यह मन्त्र दो बातों पर विशेष बल देता है। यह दो बातें ही मानव जीवन का आधार है। यह दो अंग ही मानव का कल्याण कर सकते हैं तथा यह दो अंग ही मानव को विनाश के मार्ग पर ले जा सकते हैं। यदि हम इन दोनों को अच्छे मार्ग पर ले जावेंगे, सुमार्ग पर ले जावेंगे, अच्छे कार्यों के लिए

प्रयोग करेंगे तो हम जीवन का उद्देश्य पाने में सफल होंगे। अन्यथा हम जीवन भर भटकते ही रहेंगे, कुछ भी प्राप्त न कर सकेंगे। यह दो विषय क्या हैं, जिन पर इस मन्त्र में प्रकाश डाला गया है, यह हैं :

१. हम अपने कानों से सदा अच्छा ही सुनें

२. हम अपनी आँखों से सदैव अच्छा ही देखें

विश्व का प्रत्येक सुख इन दो विषयों से ही मिलता है। हमारी शारीरिक पुष्टि भी इन दो कर्मों से ही होती है। हम यह भी जानते हैं कि इस सृष्टि का प्रत्येक प्राणी सुख की खोज में भटक रहा है किन्तु वह जानता नहीं की सुख उसे कैसे मिलेगा ? हम यह भी जानते हैं कि इस सृष्टि का प्रत्येक प्राणी सदा प्रसन्न रहना चाहता है किन्तु वह यह नहीं जानता की प्रसन्न रहने का उपाय क्या है ? जीवन पर्यंत वह इधर से उधर तथा उधर से इधर भटकता रहता है किन्तु न तो उसे सुख के ही दर्शन हो पाते हैं तथा न ही प्रसन्नता के। हों भी कैसे ? जहाँ पर सुख से रहने का, प्रसन्नता से रहने का साधन बताया गया है, वहाँ तो जा कर खोजने का उसने उपाय ही नहीं किया। वेदों के अन्दर यह सब उपाय बताये गए हैं किन्तु इस जीव ने वेद का स्वाध्याय तो दूर उसके दर्शन भी नहीं किये। किसी वेदोपदेशक के पास बैठ कर शिक्षा भी न पा सका। फिर उसे यह सब कैसे प्राप्त हो ? वेद कहता है कि हे मानव ! यदि तू सुखों की कामना करता है, यदि तू जीवन में प्रसन्नचित्त रहना चाहता है, यदि तू हृष्ट पुष्ट रहना चाहता है, यदि तू दीर्घ आयु का अभिलाषी है तो वेद की शरण में आ। वेद तुझे तेरी इच्छाएं पूर्ण करने का उपाय बताएगा। प्रस्तुत मन्त्र में भी मानव को सुखमय, संपन्न व प्रसन्न-चित्त रहने के उपाय बताये हैं।

यदि मानव आजीवन सुखी रहना चाहता है, यदि मानव आजीवन निरोग व स्वस्थ रहना चाहता है तो उसे अपने आप को कुछ सिद्धांतों

के साथ जुड़ना ही होगा, कुछ नियमों के बंधन में बंधना ही होगा। बिना नियम बद्ध हुए कोई भी कार्य सफल नहीं होता, संपन्न नहीं होता। कर्तव्य परायण व्यक्ति, दृढ़ प्रतिज्ञा व्यक्ति के लिए यह नियम अत्यंत ही सरल होते हैं किन्तु कर्म से जी चुराने वाले के लिए, पुरुषार्थ से भागने वाले आलसी के लिए यही नियम ही कठोर बन जाते हैं, जिन्हें करने से वह जी को चुराता है। किसी को चाहे यह नियम कठोर लगें या किसी को सरल किन्तु सुख की कामना के लिए, प्रसन्नता पूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए, निरोग शरीर को पाने के लिए तथा लम्बी आयु के लिए इन नियमों का पालन आवश्यक है। इसके बिना कोई अन्य मार्ग उसके पास नहीं है। बस इस के लिए अपने पास अच्छे व सुलझे हुए विचारों का स्वामी होकर मन को अपने वश में रखना होगा, इन्द्रियों को वश में करना होगा तथा अपने में सात्विक भाव जगा कर कर्मशील होना आवश्यक है। यदि हम स्वयं को इस प्रकार चला पाने में सफल होते हैं तो मन्त्र में वर्णित नियम हमें सरल ही लगेंगे। यदि हमारा मन ही हमारे वश में नहीं है, यदि हमारे विचार ही विश्रृंखल हैं, यदि हमारा अपनी इन्द्रियों पर ही अधिकार नहीं है तथा हम में कोई सात्विक भाव ही नहीं है तो सुखों की आराधना के लिए जो नियम बनाए गए हैं, वह अत्यंत कठोर लगेंगे। जो इन नियमों को अपने जीवन में अंगीकार कर लेगा, वह सुखी व प्रसन्न होगा, धन ऐश्वर्यों का स्वामी होगा तथा लम्बी आयु पाने का अधिकारी होगा अन्यथा भटकता ही रहेगा।

कठोर अनुशासन के बंधन में बंधे बिना कभी कोई उपलब्धि नहीं मिला करती। सफलता सदा उसी को ही मिलती है जो कठोरता से नियमों के पालन का व्रत लेता है। अतः स्पष्ट है कि जीवन में कठोर अनुशासन लाये बिना, नियमों का कठोरता से पालन किये

बिना न तो सुख मिल सकता है न ही समृद्धि। यदि सुख, समृद्धि ही नहीं पा सके तो प्रसन्नता कहाँ से होगी। फिर प्रसन्नता के बिना लम्बी आयु भी संभव नहीं। अतः लम्बी आयु की कामना करने वालों को कठोर नियमों के बंधन में बंधना ही होगा। प्रस्तुत मन्त्र भी इन दो बातों पर ही प्रकाश डालता है। मन्त्र कहता है कि :

१. हम अपने कानों से सदा अच्छी बातें ही सुनें। अच्छी चर्चा से मन प्रसन्न होता है। प्रत्येक मानव जो भी कार्य करना चाहता है, वह अपनी प्रसन्नता के लिए ही करता है। अतः अपनी प्रसन्नता के लिए अच्छी चर्चाओं को ही सुनना चाहिए। अच्छी चर्चा को सुनकर मन को प्रसन्नता मिलेगी। प्रसन्न मन सदा राग-द्वेष से दूर रहता है। अतः राग-द्वेष के रोग से भी छुटकारा मिलेगा। हृदय के शांत बनने से जीवन में पवित्रता आवेगी। जिस का जीवन पवित्र है उसको सदा अच्छे मित्र अथवा सहयोगी मिलते हैं, जिससे उसकी ख्याति सर्व दिशा में फैल जाती है।

२. मन्त्र कहता है कि हम यदि सुखी, संपन्न व प्रसन्न और स्वस्थ रह कर लम्बी आयु पाना चाहते हैं तो आँखों से सदा अच्छे दृश्य ही देखें। अच्छे दृश्य देखने की अभिलाषा रखने वाले की आँख कभी कुवासना, दूषित मनोवृत्ति के दृश्य देखना पसंद ही नहीं करेगी। दूसरे शब्दों में ऐसा व्यक्ति स्वयमेव ही कुवासना तथा दूषित मनोवृत्ति को अपने पास आने ही नहीं देगा। जब हम कुवासना से रहित होंगे। गंदे व दूषित वातावरण से दूर रहेंगे तो हमें मित्र, सहयोगी व प्रिय लोगों के ही दर्शन होंगे। ऐसे सहयोगी मिलेंगे, ऐसे मित्र मिलेंगे जो इन दुःखों क्लेशों से दूर रहते हुए शुद्ध मन के निर्माण के लिए शुद्ध भावना रखते होंगे। जब हमारा अनुगमन व मार्ग दर्शन ऐसे स्वच्छ साधियों के हाथ में होगा तो हमारे में घृणा व कटुता की कोई भावना आ ही नहीं सकेगी। मात्सर्य तथा (शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय.....✍

श्रावणी काल की महत्ता

वैदिक काल में वेदों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों की अविद्यमानता के कारण वेदों के पठन-पाठन का विशेष प्रचार था। वैसे स्वाध्याय करना हमारे देश का मुख्य नियम था, किन्तु वर्षाऋतु में वेद के पारायण का विशेष आयोजन किया जाता था। इसका कारण यह था कि भारतवर्ष वर्षा बहुल तथा कृषि प्रधान देश है। यहां की जनता आषाढ़ और श्रावण मास में कृषि के कार्यों में विशेषतः व्यस्त रहती है। श्रावणी फसल की जुताई और बुवाई आषाढ़ से प्रारम्भ होकर श्रावण के अन्त तक समाप्त हो जाती है। इस समय ग्रामीण जनता कृषि के कार्यों से निवृत्ति पाकर तथा भावी फसल के आगमन से आशान्वित होकर चित्त की शान्ति और अवकाश लाभ करती है। क्षत्रियवर्ग और व्यापारी भी वर्तमान समय के आधुनिक साधनों के अभाव में विश्राम करते थे और सभी वर्ग विशेष रूप से वेदों के स्वाध्याय और वेद पारायण यज्ञों में प्रवृत्त होते थे। ऋषि-मुनि और सन्यासी, महात्मा भी वर्षा के कारण जंगलों और वनस्थली को छोड़कर ग्रामों के निकट आकर रहने लगते थे और वहीं वेदपठन, धर्मोपदेश और ज्ञानचर्चा में अपना चातुर्मास्य बिताते थे। श्रद्धालु और वेदाध्यायी लोग उनके पास रहकर ज्ञानश्रवण और वेदपाठ से अपने समय को सफल बनाते थे और ऋषियों के प्रिय कार्य से उनका तर्पण मानते थे। वेदों का स्वाध्याय होने के कारण ही इस श्रावणी काल को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

अष्टाध्यायी महाभाष्य के रचयिता महामुनि पतञ्जलि अपने ग्रन्थ में विद्योपयोग के चार भेद बताते हुए लिखते हैं-

चतुर्भिश्च प्रकारैः विद्या उपयुक्ता भवति आगमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेन।

अर्थात् ज्ञान की निम्न चार विद्याओं के आश्रय से ही उसकी उपयोगिता सार्थकता एवं परिपूर्णता सम्भव है। ज्ञान का प्रथम काल आगम काल कहलाता है। इसमें मनुष्य गुरु के समीप जाकर विधिपूर्वक विद्या को ग्रहण करता है। ज्ञानी जन से सत्-ज्ञान का नियमपूर्वक ग्रहण किए बिना विद्या के अगले कालों में प्रवेश असम्भव है।

दूसरा काल स्वाध्याय काल है। इसमें गुरुजनों द्वारा दिए ज्ञान को स्वतः चिन्तन मनन द्वारा विकसित कर अन्तरात्मा में आत्मसात् किया जाता है। विद्या का तीसरा काल प्रवचन काल के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को अपने चिन्तन मनन द्वारा परिमार्जित एवं पुष्ट करके लोक में जन सामान्य के मध्य में प्रचार एवं प्रसार की व्यवस्था की जाती है। यही प्रवचन काल है। प्रवचन से विद्या की वृद्धि तथा अविद्या का हास होता है। जनता का कल्याण एवं प्रवक्ता का अभ्युदय होता है।

आजकल हमारे समाज में जन जागरण की अत्यन्त आवश्यकता है। राष्ट्र में चारों ओर अविद्या का अन्धकार फैला हुआ है। चारों ओर विभिन्न मत-मतान्तरों एवं अनेक प्रकार के पाखण्डों का जाल फैलता जा रहा है। ऐसे समय में हमें स्वामी दयानन्द के सन्देश को घर-घर पहुंचाने की आवश्यकता है। वेदों की पवित्र ऋचाओं का सन्देश विश्व को देना है। यह सब प्रचार एवं प्रवचन से ही सम्भव है।

श्रावणी का काल हमें अपने स्वाध्याय एवं विद्याप्राप्ति की याद दिलाता है। परन्तु दोष तो यह है कि हमारा आगम काल ही ठीक नहीं है तो फिर आगे आने वाले काल कैसे ठीक होंगे। हमारे विद्यार्थियों को यदि आगम काल में ही सत्य विद्या का उपदेश देकर

शिक्षित बनाया जाए तो वे निश्चित ही अपने अगले दोनों काल भी स्वयमेव ठीक कर लेंगे। विद्यारम्भ के समय में विद्यार्थियों को गुणवान, धार्मिक तथा अच्छे संस्कारों से युक्त शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जिससे वे श्रेष्ठ गुणों से युक्त, संस्कारवान, आज्ञापालक बन सकें। आज नैतिक शिक्षा के अभाव में बच्चों के अन्दर अच्छे गुणों का अभाव है। आज जो भी बुराईयां, अत्याचार, अनाचार आदि बढ़ रहे हैं उन सभी के पीछे अच्छे गुणों का अभाव, अच्छी शिक्षा का अभाव मूल कारण है। आज बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है जिससे वे अच्छी नौकरी, अच्छा पद प्राप्त करके ऐशो आराम का जीवन व्यतीत कर सकें। ऐसी शिक्षा प्राप्त करके वे अच्छे पद को प्राप्त तो कर लेते हैं, सुख के साधनों को भी प्राप्त कर लेते हैं परन्तु अच्छे गुणों के अभाव के कारण, अच्छी गुणों से युक्त शिक्षा के अभाव में वे माता-पिता के प्रति, समाज व राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं कर पाते और उस धन को विषय भोगों में तथा बुरे कार्यों में नष्ट कर देते हैं।

स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् -यह उपदेश हमें बार-बार दिया जाता है। श्रावणी काल इस उपदेश का ही स्मारक पर्व है। वेद ज्ञान के निरन्तर प्रवचन से ही इस विश्व का कल्याण है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वेद का ज्ञान संसार के लिए अमृत के समान लाभदायक एवं सुखप्रद है। अतएव हमें इस अवसर पर यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम अपने स्वाध्याय काल में वृद्धि करेंगे। इसके द्वारा अपने ज्ञान का सर्वांगीण विकास करेंगे तथा वेदों के सन्देश को विश्व के कोने-कोने में अपने प्रवचन काल द्वारा विस्तृत करेंगे तभी इस पुनीत पर्व की सार्थकता हो सकती है।

विद्या के चौथे काल को महर्षि पतञ्जलि ने व्यवहार काल बताया है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काल है। वास्तव में विद्या की वास्तविक उपयोगिता एवं सार्थकता यहीं निर्भर है। यही चरम स्थिति है, जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। मनुष्य चाहे कितना ही ज्ञान प्राप्त कर ले, किन्तु जब तक उसे अपने व्यक्तिगत व्यवहार में लाकर नहीं अपनाते तब तक हमारे पूर्वोक्त तीनों कालों का ज्ञान अधूरा एवं अपूर्ण है। इसके बिना वास्तव में हमारा जीवन ही अपूर्ण है। संस्कृत में एक कहावत है-

शास्त्राण्याधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः।

यस्तु क्रियावान् पुरुषः सः विद्वान्॥

अर्थात् शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके भी व्यक्ति तब तक मूर्ख ही है, जब तक वह उसे अपनी क्रिया द्वारा आचरण में नहीं अपना लेवे। ज्ञान द्वारा आचरण करने वाला व्यक्ति ही वास्तव में ज्ञानी और पंडित है। इसलिए हमें अपना आचरण भी पवित्र वेदानुसार बनाना पड़ेगा- **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः** अर्थात् ज्ञान से युक्त रहने पर भी सदाचरण से रहित मनुष्य को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अतः हमें विद्या की वास्तविक उपयोगिता व्यवहार काल में ही दिखानी पड़ती है। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है कि वह भद्र उपदेशों को ग्रहण करे, उसका चिन्तन एवं मनन करे, उसे अपने जीवन में व्यवहार में अपनाए तथा दूसरों को भी उसकी शिक्षा दें। उसके आचरण और व्यवहार को देखकर दूसरे भी उसे शीघ्र अपनाएं और वेद ज्ञान की ज्योति धीरे-धीरे फैलती जाएगी। यही श्रावणी का पवित्रतम सन्देश है।

प्रेम भारद्वाज

संपादक एवं सभा महामन्त्री

जीव अमर है तो हत्या अथवा आत्महत्या पाप या अपराध क्यों है?

—पं० इन्द्रजित् देव चूना भट्टियाँ, सिटी सैन्टर के निकट, यमुनानगर-१३५००९ (हरियाणा),

जीवन क्या है ? शरीर व आत्मा का संयुक्त होना तथा एक साथ निमग्नलिखित तीन प्रकार में से किसी एक प्रकार से होना है:

1. मृत्यु-बीमारी, जरावस्था अथवा दुर्घटना आदि के कारण शरीरान्त होता है तो इसे मृत्यु के नाम से अभिहित किया जाता है।

2. हत्या-जब किसी व्यक्ति का शरीरान्त कोई एक दूसरा या अधिक व्यक्ति किसी घातक साधन से करते हैं तो वह हत्या कहलाता है।

3. आत्महत्या-जब कोई व्यक्ति दुःख, अवसाद, निराशा या असफलता की दशा में किसी साधन या क्रिया द्वारा अपना शरीरान्त स्वयं कर लेता है तो इसे आत्महत्या कहा जाता है।

किसी भी प्रकार से हो, शरीर व आत्मा का पृथक् होना कभी-न-कभी अनिवार्य है। उपर्युक्त तीसरे प्रकार का शरीर एवं आत्मा का वियोग या पृथक् होना अपराध या पाप नहीं माना जाता। माना भी नहीं जाना चाहिए। स्वाभाविक मृत्यु होने पर थाने में स्पष्ट नहीं लिखाई जाती क्योंकि स्वाभाविक मृत्यु में किसी का दोष नहीं है परन्तु हत्या एवं आत्महत्या करने पर अपराध माना जाता है। हत्या या आत्महत्या करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध तुरन्त थाने में मामला दर्ज किया जाता है। तब अपराधी को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है तथा यथा सम्भव शीघ्र न्यायाधीश निर्णय देकर अपराधी को उचित दण्ड देता है। आत्महत्या करने का यत्न करने वाले व्यक्ति को यदि अपने उद्देश्य में सफलता मिल जाती है अर्थात् वह शरीर का त्याग करके चला जाता है तो मुकदमा बनता है परन्तु किसके विरुद्ध दायर किया ? जिसने आत्म-हत्या की, उसने अपराध व पाप तो किया परन्तु मुकदमा किस के विरुद्ध किया जाए? आत्महत्या करने वाला तो चला गया। उसके विरुद्ध कार्यवाही नहीं हो सकती। हत्या वाले मामले में स्थिति दूसरी होती है। जिसकी हत्या की गई है, वह तो निर्दोष था तथा अब रहा नहीं परन्तु जिसने हत्या की, वह जीवित है। उस पर हत्या करने का अभियोग चलाया जाता है क्योंकि ऐसा करना पाप तो है ही, अपराध भी है।

पाप तथा अपराध में भारी भेद है। एक ही कार्य के दो नाम हैं।

राजनैतिक संविधान के अनुसार जो कार्य गलत है, वह अपराध है परन्तु ईश्वरीय न्यायानुसार जो कार्य गलत है, उसे पाप कहा जाता है। हत्या अथवा आत्महत्या, ये दोनों राजनैतिक संविधानानुसार तथा ईश्वरीय व्यवस्थानुसार गलत कार्य हैं। अतः इन दोनों कार्यों के लिए हमने अपराध तथा पाप, इन दो शब्दों का प्रयोग किया है।

इस विषय में आगे विचार करने हेतु मुझे यह आवश्यक प्रकार से शरीरान्त हो, आत्मा का अन्त नहीं होता। न वह जलती है, न वह कटती है, न ही मरती है। हाँ, शरीरान्त अर्थात् मृत्यु होने पर आत्मा को नया शरीर मिल जाता है।

आत्मा के विषय में ऋग्वेद (१०/१८८/५) में कहा है-असमिन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं व मृत्येवतस्थे कदाचन अर्थात् मैं आत्मा हूँ, मैं ऐश्वर्यवान् हूँ। मैं कभी भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता अर्थात् मृत्यु मुझे मार नहीं सकती। मेरे धन को कोई चुरा नहीं सकता। आत्मा का धन क्या है? कर्मेन्द्रियां ज्ञानेन्द्रियाँ, शरीर के अन्य अवयव, मन व बुद्धि आदि। यह धन आत्मा को बार-बार नए-नए शरीरों के माध्यम से पुनर्जन्मानुसार मिलता रहता है, जब तक आत्मा को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। इस धन पर प्रत्येक आत्मा का ईश्वरीय आरक्षण। आत्मा मृत्यु को चुनौती देते हुए कहती है-ओ मृत्यु ! तू आई है परन्तु याद रख !! तू मेरा कुछ भी नहीं छीन सकती। एक जन्म के स्थूल शरीर को मुझसे पृथक् कर सकती हो। मुझे मार नहीं सकती। अधिकतम तू मेरा यह भौतिक शरीर नष्ट कर सकती हो। मैंने पहले भी अनेक शरीरों का भोग किया है व आगामी जन्मों में भी करूँगी ही।

यजुर्वेद के ४० अध्याय में आत्मा व शरीर के विषय में स्वीकारा है-वायुरनिलमभृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् अर्थात् आत्मा अमर है-अमृता जो मरती नहीं-अमृता परन्तु शरीर अमर नहीं। इसका अंजाम, इसका परिणाम भस्म होने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। योगेश्वर कृष्ण ने इसी बात को गीता (२/२३) में कहा है-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्तयापो न शोषयति मारुतः॥

अर्थात् आत्मा को शस्त्रों से काटा

नहीं जा सकता, अग्नि से जलाया नहीं जा सकता। जल इसे गला नहीं सकता तथा वायु उसे सुखा नहीं सकती। उस संक्षिप्त विश्लेषण व वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट है कि आत्मा अहननीय है, अमृता है, शाश्वत है। उस आधार पर स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि हत्या या आत्महत्या करने वाले व्यक्ति को हेय, घृणा व उपेक्षा की दृष्टि से क्यों देखा जाता है? उसे अपराधी व पापी क्यों माना जाता है?

इस सम्बन्ध में शरीर एवं आत्मा का पारस्परिक सम्बन्ध को भी समझना आवश्यक है। आत्मा शरीर बिना निष्क्रिय है तथा कर्मों का फल भोगने में असमर्थ है। कार्य करने का साधन आत्मा को शरीर मिलता है-शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्। शरीर आत्मा को पिछले जन्मों के कर्मों का फल भोगने व नये कर्म करने के लिए साधनरूप में ईश्वरीय न्याय व कर्मफल व्यवस्था से मिलता है। भोगापवर्गार्थम् दृष्यम् अर्थात् यह संसार (= मनुष्य शरीर) भोग व अपवर्ग के लिए ही है। कर्म व कर्ता आत्मा व साधन रूप में शरीर है। आत्मा इतना अंकिचन व बेचारी है कि शरीर बिना अपने अस्तित्व का मान भी नहीं कर सकती। शरीर पाक ही वह इच्छा, प्रयत्न, द्वेष, सुख, दुःख व ज्ञान का आभास करती है जो "न्याय दर्शन" में आत्मा में छः लक्षण अभिहित किए गए हैं। गौतम ने इस दर्शन में कहा है-"तदभावः सात्मक-प्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वं अर्थात् आत्मा नित्य है। उसका वध नहीं किया जा सकता है। अपितु उसे कार्य-साधनों का नाश होता है। अतः पाप है-"न कार्याश्रयकर्तृवधार" अर्थात् आत्मा के भोग आदि के साधन देहादि संघात का वध हिंसा रूप पातक है। शरीर बिना आत्मा साधनहीन हो जाती है। शरीर ईश्वर प्रदत्त है। ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था में बाधा डालना पाप है। एक पिता अपने पुत्र को बाजार में भेजता है। उसे थैला थमाकर पिता कहता है-बाजार में जाओ। घूमो, फिरो व बाजार को देखो। जो वस्तु तुम्हें पसन्द आए व तुम्हें आवश्यक प्रतीत हो, वह वस्तु लेकर आओ।" पुत्र बाजार में गया। घूमता-फिरता थोड़ा समय पुत्र बाजार को देखता रहा। तभी एक लुटेरा आकर उसका थैला छीनकर या चौरफाड़ करके भाग गया। बताइए,

यह अपराध माना जाएगा या नहीं? शरीर आत्मा का घर है। किसी के घर को तोड़ना पुण्य है क्या कृष्ण जी ने गीता में शरीर को आत्मा का वस्त्र कहा है। किसी के वस्त्र फाड़ने वाले को अपराधी माना ही जाएगा। यही सामाजिक व राष्ट्रीय व्यवहार में होता है।

इस निबन्ध के प्रारम्भ में वर्णित स्वाभाविक मृत्यु होने पर शरीर के अवयव अर्थात् कार्य करने व फल भोगने के साधन निष्क्रिय व व्यर्थ हो जाते हैं। तब मृत शरीर को चिन्ता में रखकर जला देते हैं। मृत देह को नष्ट कर देते हैं। तब यह कार्य पाप या अपराध क्यों नहीं माना जाता ? यह गम्भीर रोचक तथा चिन्तनीय प्रश्न है। इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि जिस आत्मा के लिए शरीर बना था, वह आत्मा शरीर को ईश्वरीय व्यवस्था से त्याग कर चला गया है। उसने लौटकर मृत शरीर में आना नहीं। जो बचा पड़ा है, मृत शरीर-उसका परिणाम/अंजाम भस्म होना है-भस्मान्तं शरीरम् (यजुर्वेद ४०/१५) अतः मृत शरीर को अग्नि की भेंट चढ़ा देना कर्तव्य है अन्यथा दुर्गन्ध फैलेगी। न्याय दर्शनकार महर्षि गौतम ने भी इस बात की पुष्टि की है-"शरीरदाहे पातकाभावात्।" अब हम कुछ चर्चा राजनैतिक संविधानानुसार हत्या तथा आत्महत्या की करते हैं। इस दृष्टि से भी किसी की हत्या करना और स्वयं अपनी हत्या करना अपराध है क्योंकि व्यक्ति को खिलाने, पिलाने, पढ़ाने, सिखाने व अन्य प्रकार से योग्य, सक्षम व समर्थ बनाने पर राष्ट्र के साधन, राष्ट्र का धन व्यय होता है। राष्ट्र का ज्ञान, विज्ञान, अन्न व जलादि व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक निर्माण में खर्च होते हैं। प्रत्येक नागरिक स्वयं में राष्ट्र की सम्पत्ति है। प्रत्येक नागरिक राष्ट्र का ऋणी है। राष्ट्र का उस पर अधिकार है। उसकी मनीषा, क्षमता योग्यता के विकास में राष्ट्र के योगदान को सदैव स्मरण रखना चाहिए। यदि वह आत्महत्या करता है तो यह घोर अपराध है। वह राष्ट्र का ऋण चुकाए बिना चला गया तो ऋण कौन चुकाएगा?

इसी प्रकार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की हत्या करके राष्ट्र की सम्पत्ति को नष्ट करने का दण्डनीय अपराध ही करता है। आत्मरक्षा या राष्ट्रहित में अपवादस्वरूप किसी राष्ट्रद्रोही व राष्ट्रघातक की हत्या करना अपराध नहीं माना जाता।

यज्ञ क्या और इसके करने से लाभ ?

ले० मन्मोहन कुमार आर्य, 196 युवश्रूवाला-2 देहरादून-248001

यज्ञ क्या है और इसे क्यों करना चाहिये ? यज्ञ वैसे तो परोपकार के सभी कार्यों व शुभ कर्मों को कहते हैं परन्तु इसका मुख्य अर्थ देव पूजा, संगतिकरण और दान के लिए भी प्रयोग में आता है। देवपूजा का अर्थ है जड़ व चेतन दोनों प्रकार के देवों की पूजा करना। सभी जड़ पदार्थों में ईश्वर ने विशेष गुण रखे हुए या भरे हुए हैं। उन जड़ पदार्थों के सभी गुणों को जानकर उनका अपने व दूसरों के हित में उपयोग करना देवपूजा कहलाती है। हमारे वैज्ञानिक देवपूजा करते हैं और इसी से भौतिक विज्ञान विकसित होकर वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुआ है। हमारे देश के लोगों ने, विशेष कर महाभारत युद्ध के बाद के लोगों ने देवपूजा की उपेक्षा की, जिस कारण देश में अज्ञान, अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, मिथ्या परम्परायें, सामाजिक असमानता तथा परस्पर पक्षपात, अन्याय एवं शोषण समाज में प्रवृत्त हो गया जिससे समाज अनेकानेक प्रकार से अवनति, परतन्त्रता व पतन को प्राप्त हुआ। इससे हमारा धार्मिक, सामाजिक, नैतिक व धन-धान्य की न्यूनता आदि सभी प्रकार का पतन हुआ। अतः यज्ञकर्ता का कर्तव्य है कि वह सृष्टि के सभी पदार्थों मुख्यतः वायु, जल, अग्नि, पृथिवी व आकाश के सभी गुणों को जानकर उनसे स्वयं लाभ ले और उससे दूसरों को भी लाभान्वित करे तो यह जड़ देवपूजा का सच्चा स्वरूप होगा। अब चेतन देवों की चर्चा करना भी उपयुक्त होगा। चेतन देवों में ईश्वर सहित माता-पिता, आचार्य, वृद्ध ज्ञानी व अनुभवी जन तथा भिन्न-भिन्न विषयों के शिक्षक, ज्ञानी व वेद आदि शास्त्रों के विद्वान व प्रचारक आते हैं। इसमें मुख्य बात यह है कि यह सभी लोग देव तभी तक हैं जब तक की यह सत्य बात व ज्ञान का प्रचार करते हैं या दूसरों को वार्तालाप व परस्पर भेंट आदि के अवसर पर उन्हें सद्ज्ञान बताते व समझाते हों। माता-पिता अपने बालकों की उन्नति के लिए तत्पर रहते हैं और वह इसके लिए कुछ भी व किसी प्रकार का त्याग करने

को तैयार रहते हैं। वह अपनी सच्ची भावना के कारण तो सन्तान के लिए देव हैं ही भले ही वह अज्ञानी ही क्यों न हो, परन्तु यदि वह ज्ञानी होने के साथ धार्मिक भी हैं तो यह उनका विशेष गुण होने से उनके देवत्व की मात्रा अधिक कही व मानी जा सकती है। जो भी हो, संतान का कर्तव्य है कि वह अपने माता-पिता से जो भी ज्ञान व अनुभव सीख सकता हो, उसे प्राप्त करे और उनके प्रति सदैव आदर, सम्मान, कृतज्ञता व सत्कार का भाव रखे व उनका सत्कार करे। चेतन देवपूजा के अन्तर्गत वह विद्वान, अनुभवी, शिक्षकों व वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आता रहे और विव्रमता और उनमें अधिकाधिक श्रद्धा रखकर उनसे ज्ञान प्राप्त करता रहे।

चेतन देवों में सबसे बड़ा चेतन देव ईश्वर वा परमात्मा है। वेद एवं इतर वैदिक साहित्य सहित ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पंचमहा-यज्ञविधि, आर्याभिविनय, संस्कार-विधि आदि में ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव पर विस्तार से प्रकार डाला गया है। इनका अध्ययन कर ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव को जाना जा सकता है। ईश्वर क्योंकि इस सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता और प्रलयकर्ता है, सभी प्राणियों का जन्मदाता व उन्हें सुख देने वाला है, सभी आत्माओं का जन्म-जन्मान्तरों का सच्चा साथी व हितकारी है, अतः सभी मनुष्यों को ईश्वर के प्रति कृतज्ञता की भावना रखकर उसकी प्रतिदिन प्रातः व सायं उपासना करना भी सभी मनुष्यों का प्रमुख कर्तव्य है। यही सबसे प्रमुख व उत्तम देवपूजा है। इसके सफल होने पर संसार के सभी रहस्य खुल जाते हैं और मनुष्य जीवन के लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसकी विधि स्वामी दयानन्द जी ने पंचमहायज्ञविधि में दी है। इस पर अनेक आर्य विद्वानों पं. विश्वनाथ विद्यालंकार, पं. गंगा-प्रसाद उपाध्याय, पं. चमूपति, स्वामी आत्मानन्द सरस्वती आदि के भाष्य व टीकायें हैं। इसके साथ

योगदर्शन का अध्ययन भी अत्यन्त लाभप्रद होता है। इस अध्ययन के बाद सन्ध्या का अभ्यास कर आत्मा का उत्थान व ईश्वर से मेल होने से जीवन सफल हो जाता है। अतः यह देवपूजा प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य ही करनी चाहिये।

देवपूजा के बाद संगतिकरण का स्थान है। संगतिकरण से भी मनुष्य में संगति किये पदार्थों व विद्वान-अविद्वानों के गुण व दोषों का संचार होता है। संगतिकरण के लिए मनुष्य में तीव्र व विवेक बुद्धि होना आवश्यक है। ज्ञान व विवेक बुद्धि होगी तो वह जिन पदार्थों के सम्पर्क में आयेगा उनका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसके लिए उन पदार्थों के विशिष्ट ज्ञान रखने वाले मनुष्यों व विद्वानों की संगति भी आवश्यक है। विद्वानों का मुख्य कार्य ही यह होता है कि वह जो ज्ञान रखते हैं उसे दूसरे इच्छुक मनुष्यों को दान करें। इस प्रकार मनुष्य विद्वानों व नये-नये पदार्थों की संगति कर उनके ज्ञान से विद्वान बन जाता है। संगतिकरण का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों को अनेकानेक विषयों का ज्ञानी बनाना प्रतीत होता है।

अब यज्ञ के तीसरे अर्थ व स्तम्भ दान का स्थान आता है। दान का अर्थ है कि हमारे पास जो ज्ञान व द्रव्य हों, उसे सुपात्रों को प्रदान करना। यदि हमारे पास धन व अन्न आदि हैं तो हम उसे भूखे व निर्धन लोगों को देकर उनकी पीड़ा व दुःखों को कम व दूर कर सकते हैं। यदि हम ज्ञानी हैं तो उस ज्ञान को विद्यार्थियों व अन्य पात्रों को देकर उनका मार्गदर्शन व विद्यावृद्धि कर सकते हैं। यह सब काम बिना किसी स्वार्थ के होना चाहिये। यदि स्वार्थ से ऐसा करेंगे तो कार्य तो अच्छा है परन्तु उसका वह पुण्य लाभ कर्ता व दाता को नहीं होगा जो निःस्वार्थ भाव से करने से हो सकता है। यह भी जान लें कि शास्त्रों के अनुसार सब प्रकार के दानों में विद्या व ज्ञान का दान सबके बड़ा व श्रेष्ठ दान माना गया है। अतः इसके लिए हमें सुपात्रों को सदैव विद्या व द्रव्य के दान से सत्कृत करने के लिए तत्पर रहना चाहिये। विद्या दान की बात करते समय हमें यह भी ध्यान रखना

चाहिये कि आज का युग पुस्तकों का युग है। हर विषय की पुस्तकें निकट के पुस्तक विक्रेताओं व नैट पर उपलब्ध हो जाती हैं। अनेक स्थानों पर बड़े पुस्तकालय भी हैं जहां दुर्लभ ग्रन्थ हैं। कई पुस्तकालयों में हस्त लिखित प्राचीन पाण्डुलिपियां भी हैं जिन पर कभी कोई दृष्टि ही नहीं डालता। अतः हमें स्वाध्याय की आदत बनानी चाहिये और नियमित रूप से स्वाध्याय अर्थात् अच्छे ग्रन्थों के अध्ययन को पर्याप्त समय देना चाहिये। इससे जीवन में बहुत लाभ होता है। कोई भी व्यक्ति व सम्प्रदाय स्वाध्याय का विरोधी नहीं है। ऋषि दयानन्द की कृपा से आज हर व्यक्ति स्वाध्याय का महत्व जानता है। वैदिक आर्य धर्म तो सबसे अधिक वैदिक व अन्य ग्रन्थों के स्वाध्याय के पक्ष में है। स्वयं आर्यसमाज के संस्थापक ने देश में उपलब्ध प्रायः सभी प्रकार के सहस्रों दुर्लभ ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इसी कारण वह देश में सर्वोपरि 'जगद्गुरु' का स्थान प्राप्त कर सके। यज्ञ का यह प्रमुख अर्थ हमने उपर्युक्त पंक्तियों में बताने का प्रयास किया है।

यज्ञ के अन्तर्गत देवयज्ञ वा अग्निहोत्र भी आता है। अग्निहोत्र देवयज्ञ प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय व उसके बाद एवं सायं सूर्यास्त से पूर्व करने का विधान है। अग्निहोत्र की परिभाषा करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि अग्नि अथवा परमेश्वर के लिए, जल व वायु की शुद्धि, ईश्वर की आज्ञा के पालनार्थ जो हवन, अर्थात् दान करते हैं, उसे 'अग्निहोत्र' कहते हैं। अग्निहोत्र में एक हवनकुण्ड होता है, जिसमें यज्ञ की समिधाओं को रखकर अग्नि प्रदीप्त की जाती है। इस तीव्र अग्नि में गो घृत व सुगन्धित, मिष्ठ, सोमलता आदि ओषधियों की आहुतियां देकर उन्हें सूक्ष्म कर वायु व उसमें वाष्प रूप में विद्यमान जल में फैलाया जाता है जिससे वायु व वायुमय जल की शुद्धि व इनका गुणवर्धन होने से मनुष्यों व अन्य प्राणियों को अनेकानेक लाभ होते हैं। जिस प्रकार अग्नि में एक मिर्च डालने (शेष पृष्ठ 7 पर)

स्त्री, पुरुष—दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी नहीं

ले० कृष्ण चन्द्र गर्ग 831 सैक्टर 10 पंकचूला, हरियाणा

आजकल स्त्री और पुरुष में समानता की वकालत की जा रही है। इसमें समानता की कम और प्रतिद्वन्द्विता की बू ज्यादा आती है। यह भावना परिवार में सौहार्द के लिए खतरनाक है। इससे पति-पत्नी में प्रेम की अपेक्षा द्वेष की भावना पनपती है जो परिवार के लिए सुखकारी नहीं है और बच्चों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं, “स्त्री और पुरुष चने के आधे-आधे दल की भान्ति हैं। जैसे दोनों दल मिलकर पूरा चना बनता है, ऐसे ही स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर ही पूर्ण होते हैं।”

Benjamin Franklin, a great American Philosopher of 18th century, says, “Man and woman have each of them qualities and tempers in which the other is deficient, and which in union contribute to the common felicity. Single and separate they are not the complete human beings : they are like the odd halves of scissors.”

अर्थ-अठारहवीं सदी के महान अमरीकी दार्शनिक बेंजामिन फ्रैंकलिन कहते हैं, “पुरुष और स्त्री-प्रत्येक में वे गुण और स्वभाव हैं जो दूसरे में नहीं हैं और वे मिलकर दोनों एक दूसरे को प्रसन्नता और सुख देते हैं। वे दोनों अलग-अलग पूर्ण मानव नहीं बनते, वे कैंची के दो अलग-अलग फालों की तरह हैं।”

स्त्री और पुरुष दोनों के कार्य और जिम्मेदारियां अलग-अलग हैं। स्त्री घर में गाय आदि पशुओं की देख-भाल करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है, पति की जरूरतों को पूरा करती है, सास, ससुर, देवरों और ननदों को उचित सम्मान देती हैं। घर की साफ-सफाई रखना, उत्तम स्वास्थ्य वर्धक भोजन तैयार करना, रोगी होने पर परिवार को औषधि देना, घर में आए अतिथियों का यथायोग्य सत्कार करना, घर के खर्च का हिसाब रखना-ये सभी काम स्त्री के अधीन रहते हैं।

पुरुष घर को चलाने के लिए तथा शुभ कार्यों में दान देने के लिए

सात्विक तरीकों से धन कमाता है। पत्नी को, बच्चों को तथा परिवार के अन्य सभी सदस्यों को सुरक्षा प्रदान करता है। पुरुष बाहर से थका-मान्दा और परेशान आता है तो स्त्री मीठी और शान्ति देने वाली वाणी बोलकर उसे शान्त करती है। एक दूसरे को देखकर पति, पत्नी का चेहरा खिल उठता है।

अथर्ववेद का मन्त्र—

इह इमौ इन्द्र सं नुद चक्रवाका इव दम्पती।

प्रजया एनौ सु अस्तकौ विश्वम् आयुः व्यश्नुताम्॥

अर्थ-पति, पत्नी दोनों मिलकर चक्रवा, चक्रवी की भान्ति प्रेमपूर्वक रहें। उत्तम घर वाले और उत्तम सन्तान वाले होकर सारी आयु आनन्द से व्यतीत करें।

मनुस्मृति में महर्षि मनु लिखते हैं—
सन्तुष्ट्यै भार्यया भर्ता भर्त्रा तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

अर्थ-जिस परिवार में पत्नी से प्रसन्न पति और पति से प्रसन्न पत्नी रहती है उस कुल में सदा निश्चित कल्याण होता है।

ये सारी बातें बताती हैं कि पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी नहीं।

स्त्री सम्मान की बात भी जोर शोर से उठाई जा रही है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद का मन्त्र है—

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवा भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

अर्थ-पति अपनी पत्नी से कहता है, हे स्त्री! तू अपने सास, ससुर, ननदों और देवरों सबके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करके घर में रानी की तरह रह।

इसी सम्बन्ध में महर्षि मनु लिखते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त-
त्राफलाः क्रियाः॥

अर्थ-जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उस घर में देवता वास करते हैं अर्थात् उस घर में उत्तम भोज्य पदार्थ और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल हो जाती है।

गाय सब की माता है

ले० पं० गुरुशरण चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द गुरु आर्य एण्ड सन्स १८० महात्मा गान्धी रोड, (दो तल्ला) कोलकाता-700002

ऐ ! अन्य धर्मावलम्बि भाईयो, समझो महत्व गाय का।

हिन्दुओं की भाँति, तुम भी करो इसका सम्मान।

यह किसी जाति-पाति का भेद-भाव नहीं रखती,

सब धर्म वालों को प्रेम से दूध पिलाती एक समान॥

गऊ माता को चार स्तन ईश्वर ने इसलिए ही दिये,

कर सके हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सब इसका दुग्धपान।

अपनी माता तो पिलाती हमें दूध दो-तीन साल तक ही,

पर गाय हमें पिलाती जीवन भर दूध जो होता अति मूल्यवान॥

सब धर्म वाले इसका दूध, घी, मलाई खा-खा करके,

बनते हैं बुद्धिमान, चरित्रवान, दयावान और साथ ही बलवान।

इसके दूध-घी से बनती हैं भाँति-भाँति की मिठाईयाँ,

जिसको खा-खा कर प्रसन्न होते हैं, हमारे बच्चे और मेहमान॥

गऊ माता हमें देती दूध, दही, घी, छाछ ही क्यों ?

देती हमें जमीन जोतने, माल ढोने के लिए अपनी सन्तान।

इसके गोबर, गोमूत्र से जो खाद है बनता,

उससे पैदा होता अन्न और फल जिससे मिलता हमें जीवन दान॥

इसके पंच-गव्य से बनती अनेकों उपयोगी दवाईयाँ,

जिनके सेवन करने से हमारे बच जाते हैं अमूल्य वान प्राण।

यही ईश्वर की सृष्टि में है एक ऐसा अद्भुत प्राणी,

जो हर जीव को लाभ ही देता, नहीं पहुँचाता किसी को कोई नुकसान।

यह देश विदेश, रंग-रूप, छोटा-बड़ा का कोई ध्यान दिये बगैर,

देती दूध, गोबर, मूत्र व बच्छड़े जिससे लाभ कमाते सभी इन्सान॥

इसलिए इसको सब अपनी माता के समान ही समझो,

इसका भी अपनी माता की भाँति ही, नहीं उतार सकते कभी ऐहसान।

यदि गऊ माता की रक्षा करते हुए, दोगे इसे माँ का ही सम्मान,

और मारने की वजाय, बचाओगे इस दीन-हीन के प्राण।

तो यह भी दूध, पूत, धन, धान, सम्पत्ति से,

घर भर जाने का, देगी प्रसन्नता पूर्वक तुम्हें बयान॥

ईश्वर है सब का पिता, हम सब हैं उसकी सन्तान,

सब जीवों की रक्षा करना, यही है मानवता की पहचान।

हिन्दुओं की भाँति, तुम सब भी, इसके महत्व को जानो,

यह है उन्नति, समृद्धि, सम्पन्नता की सही सोपान॥

गाय करती है क्रन्दन, विलाप, तुम मुझे मत मारो,

मैं बना दूँगी तुम्हें सुन्दर, स्वस्थ, निरोग और “खुशहाल”।

निश्चित ही समझो, मेरे प्यारे पुत्र व पुत्रियों,

मैं कर दूँगी बल, बुद्धि, धन, ऐश्वर्य देकर तुम्हें निहाल॥

पृष्ठ 2 का शेष-अच्छे काम करने से आयु...

मनोमालिनय के अवसर कभी आवेंगे ही नहीं। उत्तम मित्रों में बैठ कर प्रत्येक क्षण उत्तम चर्चाएँ होने से कानों में सदैव मधुर स्वर ही पड़ेंगे ऐसे मित्रों के साथ यात्रा भी करेंगे तो आँखें भी सदा सुन्दर दृश्य ही देख पावेंगी क्योंकि सचित्र कभी बुरा नहीं देखते।

स्पष्ट है कि इन दोनों नियमों के पालन से हमारे संयम को पुष्टि मिलेगी। संयम पुष्ट होने से शरीर स्वस्थ रहेगा। जब शरीर स्वस्थ व

निरोग होगा तो मन प्रसन्न रहेगा। स्वस्थ शरीर व प्रसन्न मन ही दीर्घ आयु का आधार होते हैं। इस प्रकार इन दो नियमों के पालन से हमें सुख, समृद्धि, पुष्टि, संयम, स्वास्थ्य, निरोगता, प्रसन्नता व दीर्घायु के साथ ही साथ अच्छे मित्र व सहयोगी भी मिलेंगे, यश व कीर्ति भी मिलेगी तो इन्हें अपनाने से कौन इंकार करेगा। जब एक साथ इतना कुछ मिलेगा तो इस नियम पालन से हम परहेज कैसे कर सकते हैं? निश्चय ही पालन करेंगे।

गुरु पूर्णिमा पर्व धूमधाम से मनाया

आर्य समाज मन्दिर, फिरोजपुर छावनी में 'गुरु पूर्णिमा' का पर्व बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। सर्वप्रथम आचार्य देवराज शास्त्री (कपूरथला) ने यज्ञ करवाया। जिसमें इस पर्व हेतु विशेष आहुतियाँ उलवाई गईं। इन के उपरान्त आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक व इस आर्य समाज के प्रधान श्री विजय आनन्द जी ने गुरु विरजानन्द एवं ऋषि दयानन्द के गुरु-दीक्षिण्य पर आधारित संवाद पर एक नई रचना सुनाई जिसे सुन कर सभी श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो गए और बताया कि किस तरह ऋषि दयानन्द जी ने तत्काल अपने गुरु के आज्ञा को मानते हुए अपना सर्वस्व जीवन न्यौछावर करते हुए मानवमात्र को सेवा में अपना जीवन लगा दिया। प्रधान जी ने बताया कि जीवन में पग-पग पर गुरु का मार्ग-दर्शन काम आता है। जिसने अपने गुरु की शिक्षा को ध्यान से सुना और माना उनका ही जीवन सफल हुए हैं।

श्री विजय आनन्द जी की यह रचना पढ़ कर आप भाव-विभोर हो जाएंगे। शान्ति पाठ में उपरान्त जलपान का आयोजन भी रखा गया।

मनोज आर्य महामन्त्री, फिरोजपुर छावनी

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

पृष्ठ 5 का शेष-यज्ञ क्या और इसके...

से लोगों को छीकें आने लगती है, वहां सैकड़ों मनुष्यों का बैठना दूधर हो जाता है, यह मिर्च के सूक्ष्म होने के कारण होता है। उसी प्रकार यज्ञ में डाले गये भिन्न-भिन्न द्रव्यों के सूक्ष्म होकर वायु में फैलने से वायु व जल की शुद्धि सहित स्वास्थ्य लाभ, रोग निवृत्ति एवं अन्न व ओषधियों आदि की शुद्धि से अनेक लाभ होते हैं। वायु हमारे प्राणों को जीवन देने के साथ शरीर को स्वस्थ रखती है। शुद्ध वायु से हमारा रक्त शुद्ध होता है जो हमारे अच्छे स्वास्थ्य व निरोग जीवन के लिए अति आवश्यक है। स्वास्थ्य व सुख के लिए हमें शुद्ध व ऊर्जायुक्त भोजन चाहिये। रोग दूर करने के लिए शुद्ध ओषधियों की आवश्यकता होती है। यह भी यज्ञ करने से प्राप्त होती है। परमात्मा ने वायु मुख्यतः हमारे श्वास-प्रश्वास के लिए बनाई है। यह शुद्ध होगी तो हमारा रक्त अधिक से अधिक शुद्ध होगा। हमारे दैनन्दिन व्यवहारों व कार्यों से वायु अशुद्ध होती रहती है। श्वास व प्रश्वास से शुद्ध वायु अशुद्ध बनती है। हमारे भोजन, स्नान, वस्त्र आदि के धोने, बर्तन साफ करने आदि से भी वायु व जल में बिगाड़ होता है। इस कारण हमारा कर्तव्य बनता है कि जितना वायु हमारे निमित्त से अशुद्ध हुआ है उतना व उससे अधिक वायु व वर्षा जल हम शुद्ध करें अन्यथा हम पाप के भागी होते हैं। इसका उपाय एकमात्र प्रतिदिन प्रातः सायं यज्ञ करना ही

है। यज्ञ करने से निवास गृहों में जो वायु होता है वह यज्ञ की अग्नि की उष्णता से हल्का होकर बाहर निकल जाता है और बाहर का शुद्ध वायु घर के भीतर प्रवेश करता है। यह विशेष लाभ केवल यज्ञ के करने से होता है। ईश्वर भी वेदाज्ञा के पालन से यज्ञकर्ता मनुष्यों से प्रसन्न होता है और उन्हें सुख व समृद्धि सहित कल्याण प्रदान करते हैं। यज्ञ में डाली जाने वाली सामग्री और यज्ञ से होने वाले लाभों से सम्बन्धित ऋषि दयानन्द जी के वाक्य लिखकर हम इस लेख को विराम देंगे। वह लिखते हैं 'केशर, कस्तूरी आदि सुगन्ध, घृत-दुग्ध आदि पुष्ट, गुड़-शर्करा आदि मिष्ट तथा सोमलतादि रोगनाशक ओषधि, जो ये चार प्रकार के बुद्धिवृद्धि, शूरता, धीरता, बल और आरोग्य करने वाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं, उनका होम करने से पवन और वर्षा जल की शुद्धि (पर्यावरण की शुद्धि वा प्रदूषण निवारण) करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है, उससे सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण उस अग्निहोत्र कर्म करने वाले मनुष्यों को भी जीवों का उपकार करने से अत्यन्त सुख का लाभ होता है तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है। ऐसे-ऐसे प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है।' हम आशा करते हैं कि पाठक इन विचारों को लाभप्रद पायेंगे।

अग्निहोत्र प्रशिक्षण केन्द्र का शुभारम्भ

आपको यह जानकारी अति प्रसन्नता होगी कि सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास पानीपत हरियाणा के तत्वावधान में एक दिव्य निरन्तर एक वर्षीय चलने वाला अग्निहोत्र केन्द्र आर्य समाज बसई गुरुग्राम के प्रांगण में एक अक्तूबर 2017 से प्रारम्भ हो रहा है। इसका शुभारम्भ पूज्य आचार्य श्री ज्ञानेश्वर जी रोजड़ द्वारा होगा और इन्हीं के निर्देशन में लगातार एक वर्षपर्यन्त चलेगा। इस कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने हेतु पूज्य आचार्य श्री ज्ञानेश्वर जी रोजड़ गुजरात की अध्यक्षता में दिनांक 2 जुलाई को एक बैठक आर्य समाज मन्दिर बसई में हुई। स्थानीय आर्य समाजों, हरियाणा राज्यों के भिन्न-भिन्न जिलों से व अन्य स्थानों से लगभग 70 यज्ञप्रेमी श्रद्धालु महानुभाव इस बैठक में पधारे। पूज्य आचार्य जी के उद्बोधन के बाद यज्ञप्रेमी सज्जन और भी उत्साहित हुए। उसी समय पूज्य आचार्य जी ने न्यास अध्यक्ष महात्मा वेदपाल आर्य को एक लाख रुपये प्रदान कर इस दिव्य यज्ञ में अपनी ओर से प्रथम आहुति प्रदान की। इसके बाद कई यज्ञप्रेमी श्रद्धालु महानुभावों ने अपने-अपने सामर्थ्यानुसार आर्थिक सहयोग की घोषणा की।

-संयोजक प्रबन्धक समिति

वेदवाणी

किस पाप से तेरे दर्शन नहीं होते

**पृच्छे तदेनो वरुण दिव्यः उपो एमि विविक्षुषो वि पृच्छम्।
समानमिन्ने कवयश्चिबहुः अयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते॥**

-ऋ० ७/८६।३

ऋषिः-वसिष्ठः॥ देवता-वरुणः॥ छन्दः-निवृत्तिष्टुप्॥

विनय-हे प्रभो ! मैं तेरे दर्शन पाने के लिए व्याकुल हूँ।

तुझसे साक्षात् मिलने के लिए दिन-रात प्रतीक्षा में हूँ। इसके लिए यत्न करते हुए बहुत दिन हो गये। ऐसा एक भी साधन नहीं छोड़ा जो तुझसे मिलाने वाला प्रसिद्ध हो। कठोर-से-कठोर तप बड़े आनन्द से किये हैं। तो अब कौन-सा पाप रह गया है जिससे तुम्हारे दर्शन नहीं हो पाते? हे वरुण ! तुमसे ही पूछता हूँ, मुझे मालूम नहीं। मुझे मालूम होता तो मैं कब का प्रतीकार कर चुका होता। हे पाप-निवारक ! तुम ही मुझे दर्शन-पिपासु को वह मेरा अपराध बतलाओ जिससे अप्रसन्न होकर तुम मुझे दर्शन नहीं देते। जिन्हें मैं मनुष्यों में ज्ञानी, भक्त, विद्वान्, महात्मा देखता हूँ उन सबके पास जाता हूँ और जाकर यही पूछता हूँ कि मुझे वरुणदेव के दर्शन क्यों नहीं होते? परन्तु वे सब क्रान्तदर्शी महात्मागण भी मुझे एकस्वर से यही बतलाते हैं कि वह वरुणदेव ही तुझसे नाराज़ है। वे सब सच्चे ज्ञानी मुझे यही एक उत्तर देते हैं। तो, हे देव! अब मैं तुम्हारे बिना और किससे पूछूँ? सचमुच अब और किसी से पूछना वृथा है। हे देव ! या तो मेरा पाप मुझे

नशा मुक्ति सैमीनार का आयोजन

आर्य सीनियर सैकेण्डरी स्कूल बस्ती गुजां जालन्धर में दिनांक 17 जुलाई 2017 को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में नशा मुक्ति सैमीनार का आयोजन किया गया। इस अवसर पर एल.एल.बी. तथा एम. बी.ए. आदि उच्च शिक्षा प्राप्त दिव्यांग विवेक जोशी ने प्रोजेक्टर के माध्यम से बच्चों को नशों के दुष्प्रभाव के बारे में बताया। श्री विवेक जोशी ने नशा मुक्ति को एक मिशन के रूप में लिया है जिसके तहत वह जगह-जगह जाकर नशों के प्रति सैमीनारों का आयोजन करते हैं। सैमीनार के दौरान आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान श्री सरदारी लाल आर्य, रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी, कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा, मन्त्री श्री सुदेश कुमार इत्यादि विशेषातिथि के रूप में उपस्थित हुए। इन सभी अतिथियों का स्वागत स्कूल की प्रिंसिपल श्रीमती सारिका ने किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के पदाधिकारियों ने अपने सम्बोधन में कहा कि पंजाब में नशों का जाल गहरी जड़ें जमा चुका है जिस ओर युवा वर्ग को जाने से रोकना होगा। आर्य समाज इस मामले में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। अभिभावकों को भी चाहिए कि वे अपने बच्चों पर नजर रखें और समय-समय पर सावधानी बरतें। इस अवसर पर बच्चों को नशे से दूर रहने की प्रेरणा दी गई। **-सुदेश आर्य मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब**

दिखला दो, अपनी अप्रसन्नता का कारण बतला दो, नहीं तो मुझे दर्शन दे दो। हे मेरे स्वामिन् ! जब मुझे अपने पाप का पता ही न लगेगा तो मैं उसका प्रतीकार कैसे कर सकूँगा? मैं तुम्हें प्रसन्न करके छोड़ूँगा। अपने पापों के प्रतिविधात के लिए मैं घोर-से-घोर प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ। अपने को पूरी तरह पवित्र कर डालने के लिए आज मैं क्या नहीं कर डालूँगा। मैं अब तुझसे मिल जाने के लिए व्याकुल हो उठा हूँ। इसलिए, हे अन्तर्यामी प्रभो ! मैं तुझसे अपने पापों को जानना चाहता हूँ। मेरे पापों के सिवाय इस संसार में और कोई वस्तु नहीं है जो अब मुझे तुमसे मिलने से रोक सके।



गुरुकुल का आयुर्वेद महान घर-घर में मिले रोगों से निदान



गुरुकुल च्यवनप्राश

सभी के लिए स्वादिष्ट,
रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल

पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे,
मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी

पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव



गुरुकुल ब्राह्मी रसायन

बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका

मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु

गुणवत्ता एवं ताजगी के लिए

गुरुकुल चाय

खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व
थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद

गुरुकुल द्राक्षाखट
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधाखट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, जिला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।